केदारनाथ सिंह : गाँव और शहर के मध्यस्थ कवि

प्रभात कुमार

(पूर्व-छात्र, जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, भारत।)

सारांश

केदारनाथ सिंह की कविताओं का संसार व्यापक है जिसमें रंग, रूप,छाया-धूप,ध्वनि-गंध मिलकर अपने अस्तित्त्व को परस्पर समन्वित कर लेते हैं।केदार की कविता वाद-विवाद नहीं करती हैं बल्कि संवाद करती हैं और इस संवाद के जरिए समय-काल की अवधारणा को जड़ता से चेतनता की अनुभूति कराती है तथा वास्तविकता के धरातल को तलाशती नजर आती है ।वह गँवारू भाषा जो कि मामूली सी लगती है केदारनाथ सिंह की कविताओं में आकर ग्राम्य और नागर संस्कृति के नए प्रतिमान गढ़ने लगती है।

मुख्य शब्द- बिम्ब, प्रतीक, समकालीन, परम्परा, आधुनिकता, संवेदना, नाटकीयता, क्रोनोलॉजी, बाज़ारीकरण, भौतिकवाद आदि।

प्रस्तावना-

समकालीन काव्य परिदृश्य में केदारनाथ सिंह अकेले ऐसे कवि हैं जो शहर और गाँव की सीमा रेखा के बीचों-बीच खड़े हैं और यहीं से सीमा रेखा के पार दो संस्कृतियों को अपनी कविता का हिस्सा बनाते हैं, 'फर्क नहीं पड़ता' कविता में या स्पष्ट दिख पड़ता है-

"पर सच तो यह है कि यहाँ

या कहीं भी फर्क नहीं पड़ता

तुमने जहाँ लिखा है प्यार

वहां लिख दो सड़क

फर्क नहीं पड़ता”[1]

कविता का भाव स्पष्ट है- ‘सड़क’ शहर का प्रतीक है जबकि ‘प्यार’गाँव का और केदार के यहाँ सड़क और गाँव दोनों का बराबर महत्त्व है।समकालीन दौर में न तो सड़क को छोड़ा जा सकता है न ही प्यार को क्योंकि दोनों ही अब एक दूसरे के पूरक बनते जा रहे हैं।आधुनिकता को परम्परा में समाविष्ट करने की विशिष्ट क्षमता है केदार में ,इसी समाविष्टि का कारण है कि केदार की कविताएँ सवाल करती हैं,सवाल बहुत ही आसान है मगर उसका जवाब देना उतना ही कठिन है-

“क्यों चुप रहता है

यह अग्निकिरीटी मस्तक

जो है मेरे कन्धों पर

यह जिंदा भारी पत्थर

इसका क्या होगा ?” [2]

इसी भावसाम्य के साथ केदार जी की कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं –

“क्या करूँ मैं ?

क्या करूँ ? क्या करूँ कि लगे

कि मैं इन्हीं में से एक हूँ

इन्हीं का हूँ

कि यही हैं मेरे लोग।”।[3]

‘क्या करूँ’ कविता में कवि के निज का भाव है जिसमें वह इस पीड़ा को दर्शाता है कि वह गाँव का होकर भी गाँव वालों का नहीं हो पा रहा है । शहर और गाँव के बीच का मानसिक द्वंद्व केदार की कविताओं में उद्घाटित होता है और कवि समय की सुइयों को विपरीत दिशा में ले जाने की बारम्बार चेष्टा करता है। और फिर अकस्मात् कविता का स्वर प्रस्फुटित होता है एवं पुनः एक नया प्रश्न सामने आता है –

"कौन हैं ये लोग

जो कि मेरे हैं

इनके चेहरे को देखकर

मुझे अपनी घडी की सुई

ठीक क्यों करनी पड़ती है बार- बार..."[4]

केदार के यहाँ समय के रुख को लेकर जिस प्रकार की निराशा है और समय को विपरीत दिशा में ले जाने की तड़प है, एक प्रकार की छटपटाहट है, उसी प्रकार की छटपटाहट शमशेर बहादुर सिंह के यहाँ मौजूद है –

"लौट आ ओ फूल की पंखुड़ी

फिर फूल में लग जा।

चूमता है धूल का फूल कोई

हाय।"[5]

केदार समय को विपरीत दिशा में ले जाने के लिए घडी की सुई को ठीक जरूर करते हैं लेकिन समय की कुरूपता को ढंकने की कोशिश बिलकुल भी नहीं करते। संशय और द्वैत के अन्तःसम्बन्धों और यथार्थ की भीतरी तहों को छूने –पहचानने और उसकी परतों को उभरने की प्रक्रिया में उनके काव्य में यथार्थ का विचलनकारी चरित्र पाठक को एक नया आस्वाद देती है[6]।वे न केवल गाँव और शहर के मध्य उपजे अंतरालों को लेकर चिंतित हैं बल्कि मनुष्य की मूलभूत ज़रूरत में से एक पानी की समस्याओं एवं उसकी क्रोनोलॉजी को पाठक समाज के सामने ऐसे पेश करते हैं जैसे यह समसामयिक समय में ज्वलंत मुद्दों का एक दहकता दस्तावेज़ हो। कवि 'पानी था मैं' के माध्यम से पानी अर्थात जल अर्थात आत्मसम्मान (इज्ज़त) के साथ ही तरल संवेदनशीलता के संकट को भावाभिव्यक्त किया है –

"पर कोई करे भी तो क्या

समय ही कुछ ऐसा है

कि पानी नदी में हो

या किसी चेहरे पर

झांककर देखो तो

ताल में कचरा

कहीं दिख ही जाता है"[7]

कवि यहाँ पर 'समय ही कुछ ऐसा है' कहकर भौतिकवादी समाज पर चोट करते हैं एवं प्रकृति के बाजारीकरण जिसमें मनुष्य स्वयं उत्पाद है, से उपजे सवाल को रेखांकित किया है इस बाजारीकरण के दौर में पानी बोतल में कैद है, हवा, कंपनियों – फैक्टरियों, मशीनों आदि से दूषित हो रही है व जमीन कंक्रीट के जंगलों से घिरता जा रहा है। वहां भौतिकवादी सुख-सुविधा से नाभिनालबद्ध मनुष्य का पानी भी सतत मरता जा रहा है। पानी के बाजारीकरण पर कवि की सूक्ष्म दृष्टि गयी है –

"पर चिंता की कोई बात नहीं

यह बाज़ारों का समय है।"[8]

पानी की चिंता आज से पाँच सौ साल पहले रहीम के यहाँ भी रहस्यात्मक ढंग से गोचर होती है। मनुष्य की पानी रूपी संवेदनशीलता और पानी की महत्ता को बहुत ही मार्मिक ढंग से उठाया उन्होंने-

"रहिमन पानी राखिए,बिन पानी सब सून

पानी गए न उबरे, मोती मानुष चून।"

प्रकृति का एक रूप केदारनाथ की कविताओं में पोस्टकार्ड की भाँति खुला है जिसके शब्दों को कोई भी पढ़ सकता है,चाहे वह पढ़ा-लिखा हो या अनपढ़। 'पोस्टकार्ड' कविता में खुद कवि का व्यक्तित्व खुलकर सामने आता है। यही खुलापन खतरनाक है –

"यह खुला है

इसलिए खतरनाक है

खतरनाक है इसलिए सुन्दर है

इसे कोई भी पढ़ सकता है

वह भी जिसे पढना नहीं

सिर्फ छूना आता है" [9]

'पोस्टकार्ड' कविता मुख्यतः अज्ञेय से जुड़े एक संस्मरण पर आधारित है। किस्सा यह है कि डाक-तार विभाग सन १९८४ में अपनी कोई जयंती मना रहा था। "उसमें अज्ञेय मुख्य कवि थे तथा उनके साथ गिरिजाकुमार माथुर,रघुवीर सहाय आदि थे। केदारनाथ सिंह भी वहां श्रोता के रूप में मौजूद थे।अज्ञेय ने काव्य-पाठ से पहले डाक-विभाग के बारे में दो शब्द कहे थे। उसमें थोड़ी आलोचना भी थीं। लेकिन यह कहकर श्रोता को चौंका दिया कि बिहार के उनके किसी प्रशंसक ने उन्हें एक पोस्टकार्ड भेजा था जिसमें पता के स्थान पर सिर्फ लिखा हुआ था –अज्ञेय,बम्बई। वह कार्ड उनके दिल्ली निवास पर डाक विभाग ने पहुँचा दिया था।"[10]

बहरहाल, अन्य कवियों की तरह केदारनाथ सिंह की भी लेखनी प्रेम संबंधी कविताओं पर चली हैं,लेकिन उन कविताओं का रंगोमिजाज़ अलग ढंग का है।उस प्रेम में न दैहिक आकर्षण है न आध्यात्मिकता का पुट है,बल्कि प्रेम सम्बन्धी तत्त्वों की एक सहज वृत्ति है।उनका प्रेम संस्कृति और अनुशासन के बीच थोड़ी-सी जगह चाहता है और फिर जगह तलाशने के लिए वो घर के आँगन से लेकर बन,पर्वत और रेती तक हो आता है लेकिन उसके सामने यह यक्ष प्रश्न है क्या बन,पर्वत, रेती में गुलाब का नन्हा पौधा सरवाइव कर पाएगा? पर्वत और रेत का सम्बन्ध भूगोल के उस संस्कृति का परिचायक है जहाँ गुलाब के लिए उपयुक्त वातावरण नहीं है। इसलिए प्रेम के लिए अनुकूल वातावरण की खोज में कवि इधर-उधर दौड़ता रहता है-

"छोटे से आँगन में

माँ ने लगाए हैं

तुलसी के बिरवे दो

पिता ने उगाया है बरगद छतनार।

मैं अपना नन्हा गुलाब कहाँ रोप दूँ?

मुट्ठी में प्रश्न लिए दौड़ रहा हूँ बन-बन…"[11]

कविता की खूबसूरती देखिए ,कैसे तुलसी के रूप में माँ की संस्कृति और बरगद छतनार के रूप में पिता का अनुशासन विरजमान है और इसी संस्कृति एवं अनुशासन के बीच कवि का मासूम प्रेम (नन्हा गुलाब) कुछ ख़ाली जगह खोजता है ताकि प्रेम का नया गर्माहट उसे स्पर्श कर सके।और इस गर्माहट के बिना न दोस्ती निभ पाती है न प्रेम का प्रस्फुटन हो पाता है।इसी क्रम में केदार स्पर्श रूपी गर्माहट को महसूस करते हुए सोचते हैं-

"उसका हाथ

अपने हाथ में लेते हुए मैंने सोचा

दुनिया को

हाथ की तरह गरम और सुन्दर होना चाहिए"[12]

इस प्रकार केदारनाथ सिंह की काव्य चेतना पाठक को नया आस्वाद देती है,उनकी कविताओं में तरह-तरह के यथार्थ के रंग मिश्रित हैं फिर यथार्थ की इसी सूक्ष्म दृष्टि द्वारा आम लोगों की संवेदना को चित्रित किया जाता है। 'पानी में घिरे हुए लोग, 'घोंसले का इतिहास', 'बढ़ई और चिड़िया' आम मनुष्य की दुःख भरी निजी संवेदना ही तो है। इस दुःख भरी संवेदना से पार पाना चाहते हैं और पार जाना भी-

"मुझे आदमी का सड़क पार करना

हमेशा अच्छा लगता है

क्योंकि इस तरह

एक उम्मीद-सी होती है

कि दुनिया जो इस तरफ़ है

शायद उससे कुछ बेहतर हो

सड़क के उस तरफ।"[13]

सड़क दुःख का ही तो एक पर्याय है जिससे पार किया जाना एक उद्देश्य है इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए नाटकीय मोड़ लेती है।इस नाटकीयता में कौतुक और कौतूहल है,विस्मय है,तर्क है,संवेदना है।यही कारण है कि केदार की काव्य चेतना में द्वंद्व का रंग बहुत गहरा हो जाता है और यथार्थ का विचलन कविताओं की विविधता को बढ़ाता है जिससे पाठक समाज की आबद्धता सरोकार में तब्दील हो जाती है।और तब यही सरोकार तमाम सवाल उठाते हैं तथा इस सवालों का जवाब देने के क्रम में केदार फिर प्रश्न कर डालते हैं।इसीलिए उनकी कविताओं में न शमशेर की तरह मितव्ययिता है न अज्ञेय की तरह महामौन बल्कि छोटे-छोटे शब्दों का एक लम्बा पुल बना हुआ है।छोटे और साधारण शब्दों से लबरेज होते हुए असाधारण व्याख्या प्रस्तुत करती हैं।वे शब्दों को बिलकुल ठेठ अंदाज में रंगवर्णी फूल की तरह कविताओं में पिरोते हैं और शब्द कहीं से भी ढूंढ लाते हैं।वह चाहे गाँव के कछार से,चाहे धान के पुआल से या फिर गाँव की बहती हुई हवाओं से।

सन्दर्भ -

1.केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ ,संपादक-परमानन्द श्रीवास्तव,अनिल त्रिपाठी, राजकमल पेपरबैक्स, पृष्ठ-86

2.वही, पृष्ठ- 106

3.वही, पृष्ठ - 43

4.वही, पृष्ठ- 43

5.शमशेर बहादुर सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, संपादक- लीलाधर मंडलोई, पीपुल्स पब्लिकेशन हाउस, 2011, पृष्ठ- 65

6.गोबिंद प्रसाद, कविता के सम्मुख, वाणी प्रकाशन, पृष्ठ- 143

7.केदारनाथ सिंह , प्रतिनिधि कविताएँ , पृष्ठ - 16

8.वही, पृष्ठ- 17

9.वही, पृष्ठ- 24

10.साखी त्रैमासिक पत्रिका, प्रेमचंद साहित्यिक संस्थान, संपादक सदानंद -शाही, अंक- 29,30 जून-2019, पृष्ठ-119

11.केदारनाथ सिंह, प्रतिनिधि कविताएँ, पृष्ठ- 140

12.वही, पृष्ठ- 94

13.वही, पृष्ठ- 38